

वैदिक युगीन धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति की विवेचना

सारांश

भारतीय संस्कृति में धर्म उसकी आत्मा का परिचायक है। धर्म एक वृहद दृष्टिकोण है जिससे हमें ज्ञात होता है कि इस सृष्टि के समस्त जीवों का मूल एक ही है और सभी जीव अपने अस्तित्व के लिए किसी न किसी रूप में एक दूसरे पर अविलम्बित हैं। प्राचीन वैदिक ऋषियों ने धर्म को जीवन में व्यापक रूप से प्रतिबिम्बित किया था, परन्तु जीवन में धर्म का व्यापक अर्थ केवल कर्तव्यपालन से लिया था।

मुख्य शब्द : धर्म, वेद, वैदिक युगीन धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति, उत्तरवैदिक युगीन धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति

प्रस्तावना

‘धर्म’ शब्द धृ धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना। निरुक्त में धर्म का अर्थ नियम बताया है। इस प्रकार इन दोनों शब्दों का संयुक्त अर्थ हुआ जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है वही धर्म है।¹ पाश्चात्य विचारक ‘जिमिर’ के अनुसार वस्तुतः धर्म संहिता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्ति के रूप में नियन्त्रित होता हुआ क्रमशः विकसित होता है और अन्त में चरम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति करता है। इस प्रकार आचरणगत नियमों का संग्रह ही धर्म है।

अध्ययन का उद्देश्य

धर्म की व्याख्या करना तथा वैदिक धर्म एवं उपनिषदों में ज्ञान मार्ग का महत्व स्पष्ट करना तथा वैदिक एवं उत्तरवैदिक युग की धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति की विवेचना करना।

वेद धर्म स्रोत

वेद शब्द ‘विद’ धातु से बना है जिसका अर्थ है ज्ञान, चिन्तन, दर्शन और तत्व साक्षात्कार से जो ज्ञान रश्मियाँ ऋषियों के मनःपटल पर अवतीर्ण हुईं उन ज्ञान-रश्मियों के तत्वों का अनुगमन करना ही धर्म है। प्राचीन आर्य धर्म के मूल स्रोत वेद हैं। वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ऋग्वेद – चारों में सबसे प्राचीन। ऋग्वेद के सुक्त विविध देवों की स्तुति करने वाले गीत हैं। यजुर्वेद – यज्ञों का विधि-विधान है। यह कर्मकाण्ड प्रधान वेद है। सामवेद – इसमें देवताओं की स्तुति में गाये जाने वाले मंत्रों का संकलन है। अथर्ववेद – इसमें भूत-प्रेत, जादू, टोना के मंत्र हैं।

ऋग्वेदिक धार्मिक अवस्था

ऋग्वेद में जिन शक्तियों की पूजा-अर्चना एवं स्तुतियाँ मिलती हैं वे प्राकृतिक तत्वों में निहित शक्तियों के प्रतीक हैं। ऋग्वेदिक ऋषि जगत में विभिन्न प्राकृतिक सुन्दरता को देखकर प्रभावित हुए व उनमें वे नैसर्गिक शक्तियों का अनुभव करते थे। इन नैसर्गिक शक्तियों को ऋषियों ने देवताओं की उपलब्धि मानकर, देवताओं के विषय में उत्पन्न विभिन्न भावों को वाक्यों के रूप में परिणित कर दिया। इन पवित्र वाक्यों के द्वारा देवताओं की स्तुति की जाने लगी। इस प्रकार ऋग्वेदिक धर्म का जन्म हुआ।

ऋग्वेदिक धार्मिक जीवन तथा उस समय के लोगों की सैद्धान्तिक मान्यताएँ तत्कालीन भौतिक जीवन से अत्यधिक प्रभावित थीं। पशुचारण उनका प्रमुख पेशा था और पितृ प्रधान समाज था। चूँकि पशुचारण के लिए लोगों को जगह-जगह जाना पड़ता था जिससे उनकी ये गतिविधियाँ प्राकृतिक शक्तियों से अत्यधिक प्रभावित थीं। सम्भवतः ये कारण हैं कि जहाँ ऋग्वेदिक देवकुल में अनेक देवताओं को स्थान मिला है, वहाँ ये सभी देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक भी हैं। सूर्य, अग्नि, धोस, मरुत, वायु तथा इन्द्र, वरुण, मित्र, विष्णु, रुद्र आदि भी प्राकृतिक शक्तियों से सम्बन्धित हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि जो धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिए वेद ही सर्वोत्कृष्ट प्रकार है।²



नीतू जेवरिया

सहा. आचार्य,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला
महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

ऋग्वेदिक देवताओं का वर्गीकरण तीन वर्गों में किया गया है³ :-

पृथ्वी के देवता

पृथ्वी, अग्नि, सोम, बृहस्पति, मातरिश्वन

अंतरिक्ष के देवता

इन्द्र, रुद्र, वायु-वात, पर्जन्य, यम, प्रजापति, अदिति

धुस्थान (आकाश) देवता

धोस, वरुण, मित्र, सूर्य, सवितृ, पूषन, विष्णु, आदित्य, उषा, अश्विन आदि।

ऋग्वेदिक युग में पुरुष देवताओं की प्रधानता दिखाई देती है। अपवादरूप में कुछ देवियों के नाम भी मिलते हैं। सिन्धु नदी को देवी के रूप में मान्यता दी गई है। जंगल की देवी को 'अरण्ययानी' कहा गया है। वाग्देवी (सरस्वती) की स्तुति भी की गई है। समस्त देवों में इन्द्र, वरुण तथा अग्नि का सर्वाधिक महत्व था।

ऋत् की व्यवस्था भी वैदिक युग में दृष्टिगोचर होती है। प्राच्य विद्या के आरम्भिक चरणों में विन्टरनिट्ज, मेकडॉनल, कीथ आदि ने ऋत् की व्याख्या जगत की नियमितता, शाश्वत नैतिक व्यवस्था के रूप में की है। 'वरुण को ऋतस्य गोप्ता कहा गया है।

बहुदेववाद से एकवाद

आरम्भ में वैदिक काल में सभी देवताओं का गुणगान किया गया है ऋग्वेदिक लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों का मानवीकरण किया, इसी कारण प्रकृति की अनेक रूप में पूजा का विधान मिलता है जिससे बहुदेववाद विचारधारा का प्रचलन हुआ।

किन्तु देवताओं की बहुलता एवं कर्मकाण्डों की जटिलता अधिक दिनों तक नहीं चल पायी और एक सत की विचारधारा प्रबल होने लगी। ऋग्वेद के 10वें मंडल के 'पुरुष सुक्त' में अद्वैतवाद की चरम अभिव्यक्ति मिलती है। **एकं सदविप्राबहुधावदन्ति⁴** अर्थात् सत् एक ही है और विद्वान उसे भिन्न भिन्न नामों से जानते हैं। यहीं से एकेश्वरवाद की नींव पड़ती है। और एक ब्रह्म की स्तुति को बल मिलता है। मैक्समूलर ने अवसर विशेष पर देवता विशेष की आराधना को **एकाधिदेववाद** कहकर व्याख्याइत किया है। आगे चलकर वैदिक बहुदेववाद अद्वैतवाद के 'निर्गुण ब्रह्म' में फलित हो जाता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में निर्गुण ब्रह्म की विवेचना प्राप्य है।

गायत्री मन्त्र का उस समय बड़ा महत्व था। आर्य लोग उसका दिन में तीर बार पाठ करते थे। जादू, टोना, धोखा उस समय निन्दनीय माने जाते थे।⁵

लोक-परलोक

वैदिक आर्य मृत्यु के पश्चात् क्या होता है इसकी चिन्ता से दूर थे यद्यपि ऋग्वेद में स्वर्ग और नरक का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार स्वर्ग एक ऐसा स्थान है जहाँ यम एवं पूर्वज सुख से रहते हैं तथा आत्माएँ सुख का अनुभव करती हैं। वहीं नरक एक गड्ढे के समान है जिसमें अन्धेरा है यहाँ पर गलत कार्य करने वालों को दण्ड मिलता है।

उत्तरवैदिक युगीन धार्मिक स्थिति

प्राचीन भारतीय इतिहास में जिस काल में सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक एवं उपनिषदों की रचना हुई, को उत्तरवैदिक युग (1000 से 600 ई.पू.) कहा जाता है। लोहे का प्रचलन आरम्भ हो गया था।

उत्तरवैदिक कालीन धर्म की प्रमुख विशेषता यज्ञीय एवं कर्मकाण्डों की जटिलता थी। यज्ञों में शुद्ध मन्त्रोच्चारण पर विशेष बल दिया गया। यज्ञों में दक्षता प्राप्त पुरोहित वर्ग का उदय हुआ। यज्ञ में पशुबलि भी दी जाती थी। इस युग में अनेक ऋग्वेदिक देवताओं का महत्व घट गया तथा इनके स्थान पर नवीन देवताओं की प्रतिष्ठा हुई। ऋग्वेदिक काल के इन्द्र, वरुण के स्थान पर प्रजापति, विष्णु एवं रुद्र-शिव ने ले लिया। राजसूय, बाजपेय तथा अश्वमेघ जैसे विशाल यज्ञों का अनुष्ठान किया जाने लगा। प्रेतात्माओं, जादू-टोने, इन्द्रजाल, वशीकरण में लोगों का विश्वास दृढ़ हो गया।

उपनिषदों का रचनाकाल

ऋग्वेद काल के अन्त तक जिस एकेश्वरवादी विचारधारा का उदय हुआ वह इस युग के अन्त तक पूर्णता को प्राप्त हुई। इसी समय लगभग 600 ई.पू. में उपनिषदों की रचना हुई तथा यज्ञीय कर्मकाण्ड व अनुष्ठानों के विरुद्ध सबल प्रतिक्रिया भी प्रारम्भ हुई। इस समय तप, त्याग व सन्यास पर विशेष बल दिया जाने लगा तथा इस पर कुछ विद्वान अवैदिक विचारधारा का भी प्रभाव मानते हैं।

ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता

उपनिषदों में स्पष्टतः यज्ञ तथा कर्मकाण्ड की निन्दा की गई है तथा एकमात्र ब्रह्म को ही परम सत्ता माना गया है। ब्रह्म निराकार, स्वतन्त्र निरपेक्ष है। जो जगत से परे तथा उसमें व्याप्त भी है। ब्रह्म का जीव (आत्मा) के साथ एकाकार स्थापित किया गया है। "तत् त्वम् असी" - अर्थात् जीव ही ब्रह्म है। उपनिषदों के अनुसार जीव का आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है और यह अज्ञान, अविद्या के नाश से ही सम्भव है। आत्मा को जानने वाला व्यक्ति स्वयं ब्रह्म हो जाता है।⁶

निवृत्तिमार्ग पर बल

वैदिक एवं अवैदिक विचारधाराओं के सम्मिश्रण के फलस्वरूप लोग निवृत्तिमार्गी होने लगे। सन्यास को मोक्ष प्राप्ति हेतु आवश्यक समझा गया। सन्यास की अवधारणा आर्यतर संस्कृति के प्रभाव का ही फल थी। ऋषियों ने इसी आधार पर मानव जीवन में चार आश्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

आरम्भिक उपनिषदों में केवल 3 आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ का तथा कालान्तर में सन्यास नाम से चौथा आश्रम इस व्यवस्था का अंग बन गया तथा प्रत्येक द्विज (प्रथम तीन वर्ण) को इन चारों आश्रमों से होकर जीवन यापन करना अनिवार्य बताया।

इस प्रकार वैदिक धार्मिक स्थिति अपने विकास क्रम में अनेक सोपानों को समेटे हुए दिखाई पड़ती है। जहाँ ऋग्वेदिक युग में धर्म इतना जटिल नहीं था वह केवल प्रकृति के इर्द गिर्द तक ही सीमित था वहीं उत्तरवैदिक युग में जटिल मंत्रों एवं कर्मकाण्डों से

ओत-प्रोत हो गया तथा उपनिषदों में तो धर्म अपनी परिपक्व अवस्था में दिखाई पड़ता है।

उपनिषदीय विचारकों ने यज्ञादि कर्मकाण्डों को ऐसी कमजोर नौका बताया है जिसके द्वारा जीवनरूपी महासागर को पार नहीं किया जा सकता। जीवनरूपी चक्र से मुक्ति के लिए उपनिषदों ने ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें आत्मा और ब्रह्म के अभेद सम्बन्ध के साक्षात्कार पर बल दिया गया। कठोपनिषद् में वेदों का प्रतिपाद एक ओम् है।⁷

निष्कर्षतः वैदिक धर्म एवं दर्शन अपने आप में विशद् एवं व्यापक अवधारणा है। हमारे समस्त अज्ञान का नाश इसमें समाहित है। आत्मिक शान्ति का भण्डार है वैदिक धर्म एवं दर्शन/वेदों के गूढ़ अध्ययन एवं वैदिक ज्ञान मार्ग में मनुष्य बन्धन से मुक्ति की राह प्राप्त कर सकता है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार – धर्म से व्यक्ति के जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है, धर्म किसी को क्लेश नहीं पहुँचाता है, वरन् लोक-कल्याण करता है, स्वमुक्ति नहीं लोक मुक्ति की राह दिखाता है।

वैदिक धर्म भी इसी बात को सिद्ध करता है कि जहाँ हम वैदिक ज्ञान के आधार पर समस्त जगत को मुक्ति का मार्ग दिखा सकते हैं।

वैदिक युगीन आर्थिक जीवन

वैदिक आर्यों का भौतिक जीवन मुख्यतः पशुपालन, कृषि एवं कुटीर उद्योग-धंधों पर निर्भर था। पूर्व वैदिक काल में व्यापार-वाणिज्य का विकास इस समय नहीं हो सका था फलतः उनकी अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी। ऐसी व्यवस्था में न तो नगर बस सके और न ही सिक्कों का प्रचलन हो सका क्योंकि आर्य मुख्यतः घुमन्तु जीवन व्यतीत करते थे। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर भी स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद की समकालीन मुदभाण्ड संस्कृतियों के लोग स्थायी जीवन व्यतीत करने के आदी नहीं थे।

ऋग्वेदिक कालीन आर्थिक जीवन : पशुपालन

ऋग्वेद में मुख्य व्यवसाय के रूप में पशुपालन एवं कृषि का विवरण मिलता है⁸ जबकि पूर्व वैदिक आर्यों ने पशुपालन को ही अपना मुख्य व्यवसाय बनाया था। पशु सबसे अमूल्य सम्पत्ति थी और पशु सम्पदा की वृद्धि की कामना ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में की गयी है। पूषन् देवता पशुओं के रक्षक देवता थे। पशुओं के कारण ही युद्ध होते थे गाय सबसे कीमती पशु था इसलिए गोविष्टि (गायों की खोज) ही युद्ध का प्रमुख कारण था। सबसे धनी व्यक्ति को 'गोपत' कहा गया और राजा गोपति कहलाता था। समय की माप के लिए 'गोधुलि' शब्द का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं को भी गायों से ही उत्पन्न माना गया है।

प्रो. डी. एन. झा के अनुसार – गाय को अघन्य (हत्या योग्य नहीं) भी उसे आर्थिक महत्व के कारण ही कहा गया था।

गाय के अतिरिक्त भेड़, बकरियाँ, कुत्ता और घोड़े भी पाले जाते थे। साथ ही आर्य लोग ऊँट, हाथी, बाघ, सिंह जानवरों से भी परिचित थे। गाँव में पशुओं हेतु चारागाह होते थे जिनकी देखभाल वज्रपति करता था।

कृषि

आर्य कृषि (कृष) से भी परिचित थे किन्तु ऋग्वेद के कुल 10462 मंत्रों में से सिर्फ 24 मंत्रों में ही इसका उल्लेख मिलता है। पशुचारण की तुलना में कृषि का महत्व न्यून था इसकी पुष्टि ऋग्वेदिक देवकुल में देवियों की नगण्य स्थिति से होती है।

ऋग्वेद में प्रथम मण्डल में कथन है कि अश्विन देवताओं ने मनु को हल चलाना सिखाया। ऋग्वेद में एक स्थान पर अपाला ने अपने पिता अत्रि से खेतों की समृद्धि के लिए प्रार्थना की है। ऋग्वेद में हसिया (दात्र, सृणि), कोठार, गट्टर, चलनी, सूप (शूर्प) आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में कृषि प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में 5 प्रकार के चावल का भी उल्लेख मिलता है। सिंचाई का भी उल्लेख मिलता है। फसलों में सिर्फ यव (जौ) का ही उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में दास, रथ, घोड़े के दान का भी उल्लेख मिलता है परन्तु भूमि दान का नहीं, साथ ही राजा को भूमि का संरक्षक भी नहीं बताया गया है, इससे स्पष्ट है कि भूमि पर कबीले का ही नियंत्रण होता था।

व्यवसाय व उद्योग

आर्य कृषि के साथ-साथ अन्य व्यवसायों से भी परिचित थे। पशु, पक्षी, आखेट जीविकोपार्जन का साधन थे। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त ऋग्वेद में कुछ व्यवसायियों के भी नाम मिलते हैं जैसे तक्षा (बढ़ाई), कर्मा (लुहार), स्वर्णकार, चर्मकार, वाय (जुलाहा) कुम्भकार प्रमुख थे। आर्यों के सामरिक जीवन में रथों का अधिक महत्व होने के कारण सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक थी। 'अयस' नामक धातु का उल्लेख भी मिलता है इसकी पहचान तांबा, कांसा या लोहा के रूप में बताते हैं। ऋग्वेदिक आर्य लोहे से परिचित नहीं थे।

सूत, रेशम व ऊन के वस्त्र बनाये जाते थे। सिन्ध तथा गांधार प्रदेश सुन्दर ऊनी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। चर्म उद्योग भी ज्ञात था। इसके अतिरिक्त वैद्य (भिषज) कर्तक-नर्तकी, नाई (वास्तु) तथा सुरा बेचने वालों का भी अलग वर्ग था।

व्यापार-वाणिज्य

यद्यपि ऋग्वेद में समुद्र का उल्लेख मिलता है किन्तु इससे विदेशी व्यापार की पुष्टि नहीं होती। मूलतः कृषक एवं पशुपालक होते हुए भी आर्य व्यापार-वाणिज्य के प्रति उदासीन नहीं थे।

व्यापार-वाणिज्य प्रधानतः पाणि वर्ग के लोग करते थे। जिमर तथा लुडविंग पाणि का अर्थ व्यापारी बताते हैं। पाणि ऋण देते थे तथा ब्याज अधिक लेते थे इसलिए उन्हें वेकनाट (सूदखोर) कहा गया।⁹ व्यापार अदल-बदल प्रणाली पर आधारित था। विनिमय के माध्यम के रूप में निष्क का उल्लेख हुआ है। सम्भवतः प्रारम्भ में यह हार जैसा कोई स्वर्णाभूषण था परन्तु बाद में सिक्के के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। वस्त्र, चादर तथा चमड़े का व्यापार होता था। तत्कालीन समाज की खास

बात यह थी कि उपरोक्त किसी भी व्यवसाय को हीन नहीं समझा जाता था।¹⁰

उत्तर वैदिक कालीन आर्थिक जीवन

कृषि और पशुपालन अब भी आर्थिक जीवन के मुख्य आधार थे। शतपथ ब्राह्मण में कृषि की चारों क्रियाओं — जुताई, बुवाई, कटाई तथा मड़ाई (कृषन्तः, पन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः) का उल्लेख हुआ है। काठक संहिता में 24 बैलों द्वारा हल खींचे जाने का उल्लेख मिलता है। वाजसनेयी संहिता में कई प्रकार के धन्वों का उल्लेख है। दात्र (दरांती) के अवशेष अतीरंजखेडा से मिले हैं। यहीं से जौ, चावल, गेहूँ के प्रमाण भी मिले हैं। हस्तिनापुर से चावल तथा जंगली किस्म के गन्ने के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

उत्तर वैदिक काल में लोगों के आर्थिक जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन उनके स्थायी निवास में भी दृष्टिगोचर होता है, जो कृषि के अधिकाधिक प्रसार का परिणाम था। अथर्ववेद में सिंचाई के साधन के रूप में वर्ष, कूप एवं कहर का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न को 'ब्रह्मा' कहा गया है। यजुर्वेद में हल के लिए 'सीर' तथा वाजसनेयी संहिता में गेहूँ के लिए गोघूम का उल्लेख है।

पशुपालन

इस काल में मुख्य पालतू पशु गाय, बैल, घोड़ा, हाथी, भैंस, भेड़, बकरी, गधा, ऊँट, शूकर आदि थे।

महत्वपूर्ण पशु गाय थी। अथर्ववेद में गाय, बैल, और घोड़ों की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गयी थी। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार दो गद्दे अश्विन देवताओं के रथ खींचते थे। शतपथ ब्राह्मण में शूकर (सुअर) की चर्चा की गई है। केवल (मछुआरे) का ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है।

उद्योग—धन्धे

व्यवसाय क्रमशः वंशानुगत होते जा रहे थे। वाजसनेयी संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस समय के विभिन्न व्यवसायों की एक लम्बी सूची मिलती है। इनमें स्वर्णकार, रथकार, चर्मकार, जुलाहा, रज्जुकार, मछुआरे, लुहार, नर्तक, सूप, गोप, कुम्भकार, वैद्य, ज्योतिषी, नाई प्रमुख थे।¹¹ स्वर्ण तथा लोहे के साथ आर्य लोग टिन, तांबा, चांदी, शीशा आदि धातुओं से परिचित हो चुके थे। गांधार, बलुचिस्तान, पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ई.पू. 1000 के लगभग लोहे का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था। उत्तर वैदिक साहित्य में लोहे को 'कृष्ण अयस' कहा गया है। स्त्रियाँ रंगाई कशीदा में निपुण थी। वाजसनेयी संहिता से ज्ञात होता है कि इस काल में 100 पतवारों से संचालित नावें बनती थी।

सारांशतः कहा जा सकता है कि उत्तर वैदिक कालीन आर्यों का भौतिक जीवन पहले की अपेक्षा विकसित था। उत्तरी गंगा घाटी में आर्य स्थायी रूप से बस गये तथा पर्याप्त मात्रा में कृषि उत्पादन होने लगा

था। लोह—तकनीक के ज्ञान ने कृषि उत्पादन वृद्धि में और सहायता की। विभिन्न व्यवसायी संभवतः समूहों में संगठित होने लगे थे इन संगठनों के प्रधान के लिए 'गण' गणपति, श्रेष्ठी शब्दों का व्यवहार मिलता है।

व्यापार—वाणिज्य

साहित्यिक स्रोतों में जल एवं स्थल मार्गों द्वारा व्यापार के उल्लेख मिलते हैं। इस समय अनेक नगरों एवं विदेशी व्यापार का भी उदय हुआ। यद्यपि सतमान, निष्क, कृष्णल, पाद शब्दों का उल्लेख मिलता है तथापि सिक्कों के प्रचलन का कोई पुरातात्विक प्रमाण नहीं मिलता। व्यापार विनिमय पर आधारित था।

शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि कर्ज देने एवं सूद लेने की प्रथा प्रचलित हो चुकी थी।

निष्कर्ष

इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद आर्यों की अर्थव्यवस्था ग्रामीण ही थी। इस प्रकार इतिहास के अध्ययन में वेद सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है। हमारी आज की समस्त अर्थव्यवस्था का मूल वैदिक अर्थव्यवस्था थी। हमारी आज की बाजारी पद्धति की नींव वैदिक काल में ही पड़ चुकी थी किन्तु वर्तमान की भौतिक सोच एवं स्वार्थवादी सोच से हमारी अर्थव्यवस्था आम आदमी के हित से दूर होती जा रही है जिसमें सब का भला निहित ना होकर पूंजीपति का हित निहित है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. महाभारत, कर्णपर्व, 94•31
2. जिज्ञामासननां प्रमाणं परमं श्रुति : मनु 2/13
3. ऋग्वेद 1•64•46
4. वही
5. ऋग्वेद 1•25•6
6. उपनिषद्
7. कठोपनिषद् 2•15
8. Rapson, Cambridge History of India, P. 89, Vol. I
9. ऋग्वेदिक इण्डिया, पृ. 187—199
10. वी.एम. आपटे, वैदिक युग, पृ. 396
11. रेपसन केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, Vol. I, P. 122
12. वाजसनेयी संहिता 31•77
13. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति — डॉ. के.सी. श्रीवास्तव, 1999—2000, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद
14. प्राचीन भारत का इतिहास —द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, 1981, दिल्ली विश्वविद्यालय
15. भारत का इतिहास — कामेश्वर प्रसाद
16. प्राचीन भारत का इतिहास — डॉ. ए.के. मित्तल, 2002, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
17. भारत का इतिहास —पं. शिवकुमार गुप्ता, 2005, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर
18. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास — कृष्ण कुमार, संस्करण—1993, पृ. 84, 85, 90, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली